पारस परस

वर्ष-7 अंक-1 जनवरी-मार्च, 2017 रजि. नं. : यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ-40 मूल्य -₹ 25

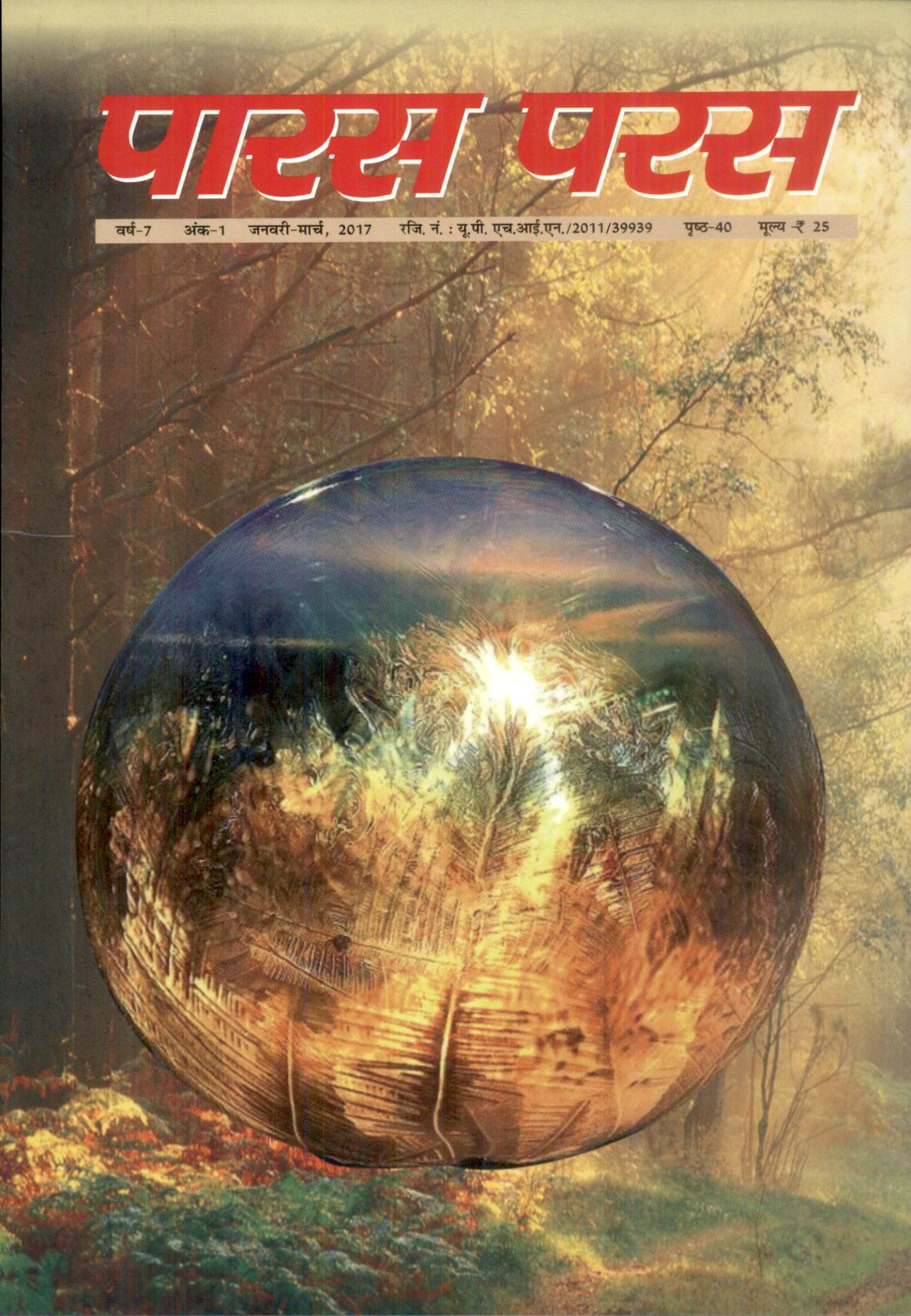

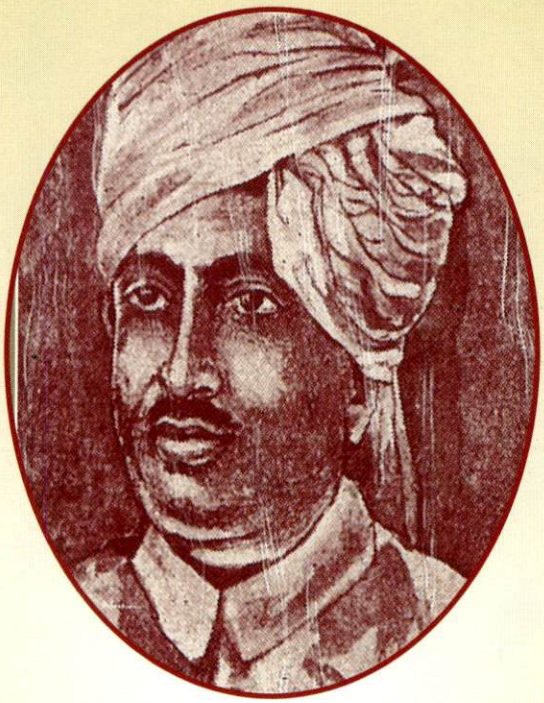

ठाकुर गोपाल शरण सिंह

जन्म-1 जनवरी 1891 निधन-2 अक्टूबर 1960

कुछ भी बनूँ मैं, मुझे होगा हर्ष ही अपार,
पाऊँ रहने जो सब काल तेरे पास, मैं।
चाहता हूँ हरदम बनके चकोर एक,
देखा करूँ तेरे मुख–चन्द्र का प्रकाश मैं।

फूल बन तेरे उपवन में खिलूँ मैं नित्य,
और करुँ तेरे केश–कुंज में विलास मैं।
सुख से सदैव करुँ तेरे में निवास।
बनकर तेरा एक लघु अभिलाष मैं।

वर्ष : 7 अंक : 1 लखनऊ जनवरी-मार्च, 2017, पृष्ठ -40, मूल्य-₹25, रजि. नं. : यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939

पारस परस

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय 2
पुण्य–स्मरण 4
श्रद्धासुमन
बाबूजी को याद करें– डा. अनिल कुमार पाठक 5
कालजयी
तथागत बुद्ध – पारसनाथ पाठक 'प्रसून' 6
भारत–ठाकुर गोपालशरण सिंह 7
कोयलिया सुनिकै तोरि पुकार री–चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' 8
हम कहा बड़ा ध्वाखा होइगा–चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' 9
अब मूर्ख बनो–गोपाल प्रसाद व्यास 10
हिरोशिमा– सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' 11
बादल राग–सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' 12
समय के सारथी
प्रतीक्षा नये जीवन की–डा.शम्भुनाथ 13
मेरा बसन्त–योगेश प्रवीन 14
आने याद लगी, रस भीनी–चक्रपाणि पाण्डेय 15
स्वर्ण–परी–कृष्ण मुरारी 'विकल' 16
न कोई ऐसा इतिहास रहा–गिरीश पाण्डेय 17
मेरी अन्तिम चाह यही है–दयाशंकर अवस्थी 'देवेश' 18
कर रहा कब प्रतीक्षा प्रिय! तुम्हारी–विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद' 19
क्या जाने–विजयशंकर शुक्ल 20
बचपन के दिन–महेशचंद द्विवेदी 21
गजल–चन्द्रमणि त्रिपाठी 22
कलरव
खिलते और खेलते फूल–पं. नरेन्द्र शर्मा 23
साल दर साल–भवानीप्रसाद मिश्र 24
नारीस्वर
लघुगीत–एम. जोशी 'हिमानी' 25
कुछ लिखा दिल से, आज–सुमिता कमथान 26
दृढ़ प्रतिज्ञा–डा. अमिता दुबे 27
द्वार पर आने तो दो– रामा आर्य 'रमा' 28
सपने सँवर गए–डा. ऋचा सत्यार्थी 29
तो.....क्या होता–डा. नलिनी पुरोहित 30
धरती–पहाड़–डा. विद्याविन्दु सिंह 31
पुरखों की वसीयत–प्रो. मालती दुबे 32
सुन्दर अपना संसार–ऊषा मिश्रा 33
नवोदित रचनाकार
ताकतवर–पंकज सिंह 34
कैसे स्वीकारूँ–शैलेन्द्र प्रताप सिंह 35
कठिनाइयों की परवाह करो नहीं–महेश प्रसाद पाण्डेय 'महेश' 36
प्रेम की परिभाषा–जिओ लाल जैन 37
चलो गाँव की ओर–गिरीश चन्द्र वर्मा 38
सजने लगा साज बसंत–श्रीरमन 39
कामना–अवधेन्द्र प्रताप सिंह 40

संरक्षक मंडल
डा. एल.पी. पाण्डेय
अभिमन्यु कुमार पाठक
अरुण कुमार पाठक

संपादक
डॉ अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
अभ्युदय प्रकाशन प्रा.लि.
लखनऊ
मो. 9696433312

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक डा. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डा अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

नैतिक मूल्य के बिना किसी उपलब्धि का कोई महत्त्व नहीं है

माँ द्वारा बचपन में सुनायी गयी प्रायः सभी कहानियाँ नैतिक व मानवीय मूल्यों से ओत–प्रोत रहती ही थीं। ये कहानियाँ भारतीय सांस्कृतिक धरोहरों व परम्पराओं तथा देशभक्ति से भी जुड़ी होती थीं। एक दिन माँ ने मुझे एक कहानी सुनाई जो इस प्रकार थी– ''बहुत पहले की बात है, एक राजा थे जो अत्यन्त उदार एवं न्याय प्रिय थे। वे अपनी जनता की भलाई व विकास में सदैव लगे रहते थे। उनके महल के पास ही एक बहुत बड़ी हाट लगती थी जिसमें दूर–दूर से किसान, व्यापारी अपना सामान बेचने के लिये आया करते थे। राजा का यह आदेश था कि हाट के उठते समय जिस किसी का भी सामान यदि बिक नहीं पाया हो यानि उसे किसी ने न खरीदा हो, तो वह सामान राज्य की ओर से खरीद कर किसान अथवा व्यापारी को उसका उचित मूल्य दे दिया जाय। राजा के इस आदेश से सभी किसान व व्यापारी प्रसन्न रहते थे क्योंकि उनका सारा सामान बिक जाता था और उन्हें उसका उचित मूल्य भी मिल जाता था। एक दिन हाट के उठते समय राजा के पास उनके मातहत आये और राजा से कहा, ''आज हाट में एक व्यक्ति का सामान नहीं बिका। उसका कोई खरीददार नहीं मिला।'' राजा ने पूछा, ''वह सामान क्या है'' ?मातहतों ने कहा कि वह 'साढ़े साती' की मूर्ति है। राजा ने कहा कि संबंधित व्यापारी उसका जो भी मूल्य माँग रहा है उसे देकर, खरीद लिया जाय। राजा के सलाहकारों ने कहा कि महाराज ऐसा न करें, क्योंकि उक्त मूर्ति के खरीदने से राज्य पर अनेक प्रकार के संकट आ सकते हैं। किन्तु राजा ने दृढतापूर्वक कहा कि मैंने अपने राज्य के किसानों, व्यापारियों के हित में इस तरह के आदेश दिये हैं और अब मैं इन आदेशों से विचलित नहीं हो सकता। राजा के सामने उनके सलाहकारों व मातहतों की एक भी न चली। अन्ततः उस व्यापारी से 'साढ़े साती' की मूर्ति का मूल्य देकर खरीद लिया गया। उक्त मूर्ति को राज्य भण्डारगृह में ले आया गया। जैसे ही वह मूर्ति राज्य भण्डारगृह में लायी गयी, उसी समय स्वर्णिम आभायुक्त एवं पद्मासनासीन एक स्त्री राजमहल से बाहर की ओर जाने लगी। राजा ने उस महिला से पूछा, ''आप कौन हैं'' ?महिला ने कहा, ''मैं लक्ष्मी हूँ।'' राजा ने पूछा कि आप राजमहल से बाहर की ओर क्यों जा रही हैं?लक्ष्मी ने उत्तर दिया कि राज्य भण्डारगृह में 'साढ़े साती' का प्रवेश हो गया है इसलिये अब मैं यहाँ नहीं रुक सकती। राजा ने विनम्रतापूर्वक उन्हें धन्यवाद देते हुए विदा कर दिया। उसी समय अत्यन्त दैदीप्यमान आभायुक्त एक पुरुष भी राजा के राजमहल से निकलकर बाहर की ओर जाते हुए दिखा। राजा ने पूछा, ''हे भद्र पुरुष! आप कौन हैं'' ?''मैं कुबेर हूँ'', वह पुरुष बोला। राजा ने कहा, आप कहाँ जा रहे हैं?कुबेर ने भी लक्ष्मी की तरह ही उत्तर दिया। राजा ने उन्हें भी विनम्रतापूर्वक धन्यवाद देते हुए विदा कर दिया। कुछ ही देर में एक सौम्य व्यक्तित्त्व वाले पुरुष को भी राजा ने राजमहल से बाहर की ओर जाते हुए देखा। राजा ने उनसे भी प्रश्न किया, ''हे भद्र पुरुष! आप कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं?''उस भद्र पुरुष ने कहा, ''मैं धर्म राज हूँ।'' और उसके द्वारा भी अपने जाने के संबंध में लक्ष्मी व कुबेर की तरह ही उत्तर दिया

गया। राजा ने अपने दोनों हाथ जोड़कर उस भद्र पुरुष से प्रार्थना की कि आप इस राजप्रासाद को छोड़कर कहीं न जाइये। उस भद्र पुरुष ने कहा कि राजन, आपने ऐश्वर्य व समृद्धि के प्रतीक लक्ष्मी व कुबेर को नहीं रोका तो आप मुझे क्यों रोक रहे हैं?राजा ने कहा कि मैं ऐश्वर्य व समृद्धि के बिना तो रह सकता हूँ किन्तु धर्म के बिना नहीं रह सकता। धर्मराज राजा की बातों से बहुत प्रसन्न हुए और वे वापस राजप्रासाद में चले गये। थोड़ी देर में कुबेर व लक्ष्मी भी स्वयंमेव राजप्रासाद में वापस आ गये..... ।''

उक्त कहानी के माध्यम से शायद मेरी माँ मुझे यह सीख देना चाह रही थी कि धर्म या यानि नैतिक व मानवीय मूल्यों के बिना ऐश्वर्य व समृद्धि का कोई महत्त्व नहीं है। बड़ा होने पर मैंने एक अंग्रेजी कहावत भी सुनी कि –

"When wealth is gone, nothing is gone;
When health is gone, something is gone;
When character is gone, everything is gone;" (अज्ञात)

इसी तरह का भाव लिये हुए बिली ग्राहम (Billy Graham) का भी एक वाक्यांश (Quotation) है –

" When wealth is lost, nothing is lost,
When heath is lost, something is lost,
When character is lost, all is lost."

ये वाक्यांश भी माँ द्वारा सुनाई गयी कहानी की ओर ही इशारा करते हैं किन्तु यह विडम्बना ही है कि आज के समय में सब कुछ उल्टा हो गया है। आज धन और सम्पत्ति की प्राप्ति का उद्देश्य सबसे पहले पायदान पर है भले ही उसको प्राप्त करने के लिये किसी भी तरह के साधनों का प्रयोग करना पड़े या किसी भी तरह के हथकंडे अपनाने पड़ें। अब साधनों की पवित्रता व नैतिक आदेशों को कोई महत्व नहीं दिया जा रहा है जब कि इनके अभाव में ऐसी किसी उपलब्धि का कोई मूल्य नहीं।

हमने यह संकल्प लिया है कि हिन्दी साहित्य के प्रणेताओं के प्रति ''सृजन स्मरण'' व ''कालजयी'' स्तम्भों के माध्यम से अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते रहेंगे। ''अप्रैल–जून'' के प्रत्येक अंक में हम ऐसे हिन्दी कवियों का पुण्य स्मरण भी करेंगे जिनकी पूर्ण जन्मतिथि काफी प्रयास के बाद भी उपलब्ध नहीं है। इसी क्रम में सभी सुधी पाठकों व हिन्दी साहित्य–प्रेमियों से यह अनुरोध है कि वे इस प्रयास में हमारा सहयोग करेंगे। हम बिना किसी पूर्वाग्रह के मातृभाषा हिन्दी की सेवा में तत्पर होकर इस पत्रिका का प्रकाशन कर रहे हैं जिसके लिए सभी हिन्दी प्रेमियों का आत्मीय सानिध्य निवेदित है।

नव वर्ष 2017 की शुभ कामनाओं सहित,

डा० अनिल कुमार

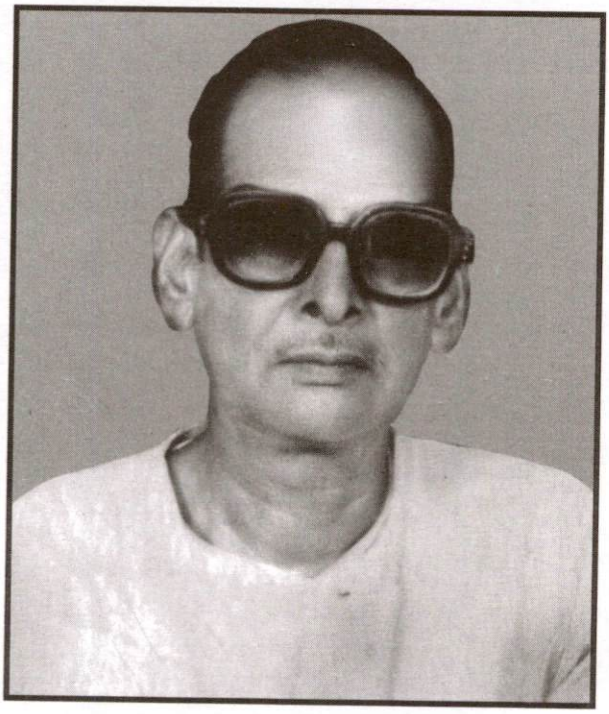

पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जन्म- 17 जुलाई 1932 निधन- 23 जनवरी 2008

"तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो, दिग्दर्शक, प्रेरक, अरिहन्त।
अजर, अमर हे प्राणतत्व! तुम, कण–कण में व्यापी बसन्त।।"

शिक्षाविद् व हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर **स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून'** का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के गोपालपुर ग्राम में गुरुपूर्णिमा को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कॉलेज, मीरगंज, जौनपुर में हिन्दी विषय के प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

श्री **'प्रसून'** की पावन स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिये **'पारस परस'** नाम से काव्य–त्रैमासिकी प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

स्वर्गीय 'प्रसून' जी के निर्वाण दिवस पर विनम्र श्रद्धांजलि

बाबू जी को याद करें

- डा. अनिल कुमार पाठक

बाबू जी को याद करें, हम,
हर पल, उनको याद करें।

काल चक्र ये चलता जाये,
कुछ बिछुड़े, कुछ मिलता जाये।
कुछ टूटे, कुछ जुड़ता जाये,
कुछ गिरता, कुछ बनता जाये।
पर अपनी दुनिया में सब कुछ,
केवल–केवल मिटता जाये ।
दुःख के तूफां में ही उलझा,
कैसे जीवन आबाद करें ।

बाबू जी को याद करें, हम,
हर पल, उनको याद करें ।।

तेरी गरिमा 'औ' मर्यादा,
जीवन कितना सीधा–सादा।
दृढ़ प्रतिज्ञ 'औ' अडिग इरादा,
मिला नेह हमको भी ज्यादा।
जबसे छूटा साथ तुम्हारा,
बनकर रह गये केवल प्यादा।
घोर निराशा, रीती आशा,
किससे, अब फरियाद करें।
बाबू जी को याद करें, हम,
हर पल, उनको याद करें ।।

त्याग, समर्पण और प्रतिज्ञा,
तेरी वह प्रतिभामय प्रज्ञा ।
स्थितप्रज्ञ तुम्हारी संज्ञा,
नहीं कर सकूँ, कभी अवज्ञा ।
तुम प्रेरक, आदर्श हमारे,
करता, फिर से आज प्रतिज्ञा।
बाबू जी संदेश तुम्हारे,
चहुँ दिशि गूँजें, नाद करें ।
बाबू जी को याद करें, हम,
हर पल, उनको याद करें ।।

तथागत बुद्ध

- पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

कौन हो तुम, वृक्ष के नीचे, अकेले साधना में लीन ,
कौन हो तुम, सान्ध्य नभ में जलज घन से छीन ।
कौन हो तुम, डालते मधुमास का उल्लास जग में,
भर रहे हो एक मोहक और मधुमय हास जग में।
कौन हो तुम, विश्व–शतदल पर पड़े नव ओस– कणसे,
कौन हो तुम, राग रंजित छन्द के पहले चरण से।
विश्व की निद्रित निशा में सो रहा जब आज अणु–अणु,
जल रहे हो दीप से तुम, छोड़ते मधुमय किरण–कण।

कौन हो तुम, विश्व की शय्या सुकोमल छोड़कर,
कौन हो तुम, कामिनी के प्रेम से मुँह मोड़कर।
त्याग कर वैभव–धरा का, खोजते हो कौन सा धन,
खोजते हो इस निशा में कौन सी उज्ज्वल किरण–कन।
कौन हो तुम, विश्व में छाये दुःखों के मूल पर,
कौन हो तुम, आत्मा की चिर भटकती भूल पर।
डालते नव–नव किरण रस का अमित उद्भास करके,
कौन हो तुम, दे रहे मधुमय कुसुम में हास भरके।

कौन हो तुम, तृषित जग की मोह–निद्रित प्यास हरते,
कौन हो तुम, बादलों सा प्रेम–रस का जल बरसते।
मुक्ति के आवास हो तुम,साधना के दूत जैसे ,
फेंकते हो दो नयन से प्रेम का मधु–सूत जैसे।
कौन हो तुम, चन्द्र की मधु रश्मियों सा शीत लगकर,
कौन हो तुम, रवि–किरण सें फेंकते द्युति इस धरा पर।

विश्व की निर्वाण गति पर कौन सा तू मंत्र पढ़ता,
चेतना का हास भरकर, दूर करते विश्व जड़ता।
कौन हो तुम, कल्पना सा प्राण में मधु–गान भरते,
कौन हो तुम, ज्योत्सना से विश्व का श्रृंगार करते।
कौन हो तुम,डालते करुणा–सलिल की धार मन पर,
कर रहे मधु–लेप हो तुम, तप्त–जीवन के जलन पर।
कौन तुम, फेंकते, यश की किरण को इस धरा पर,
कर रहे हो जग प्रकाशित साधना की ज्योति भरकर।
ज्ञान दीपक के किरण से मोह में अवसाद भरते ,
कौन हो तुम, विश्व में नव–नव कुसुम का हास भरते।

कौन हो तुम, चल रहे जग साथ ही पथ पर निरन्तर,
युग गया, पर तुम अमर हो, शान्ति का संदेश देकर।
कौन हो तुम, दे रहे वरदान की द्युतियाँ चिरन्तन,
आज मध्यम मार्ग से ही पा सके कल्याण जन–मन।
कौन हो तुम,खींचते यों आज अपनी ओर जग को,
कौन हो तुम, शान्त रस से हो भिगोते क्लान्त मन को।
चरण–पथ के रेणु छूकर, पा सके कल्याण जिससे दीन ,
कौन हो तुम, वृक्ष के नीचे अकेले साधना में लीन ।

❖❖❖

भारत

- ठाकुर गोपालशरण सिंह

हो तुम प्राची–रवि–रश्मि–माल।
हे विश्व–वन्द्य भारत विशाल।।

हे गुण गण के गौरव–गणेश,
हे सुरपुर के वैभव अशेष।
हे सप्त–सिन्धु–सेवित विशेष,
आचार्य जगत के आर्य–देश।

हो जगत–प्राण तुम प्रणत–पाल।
हे विश्व–वन्द्य भारत विशाल।।

हे आदि तपस्वी पुण्यवान्,
हे आदि–सभ्यता के निधान।
हे आदि–यती के साम–गान,
हे आदि–जगत के उपाख्यान।

हो आदि ज्ञान–तरु तुम रसाल।
हे विश्व–वन्द्य भारत विशाल।।

हे आदि काल के शूर–वीर,
गम्भीर नीर–निधि से गंभीर।
हे विश्व–विजेता समर–धीर,
हे अखिल सिन्धु के विपुल तीर।

हो तुम मानव–मानस–मराल।
हे विश्व–वन्द्य भारत विशाल।।

हे ऋद्धि–सिद्धि के रुचिर धाम,
सुषमा के लीलास्थल ललाम।
हे जन्म–सिद्ध साधक अकाम,
हे दिव्य–काम, हे दिव्य–नाम।

हो जग–जीवन के उषःकाल।
हे विश्व वन्द्य भारत विशाल।।

❖❖❖

कोयलिया सुनिकै तोरि पुकार री

- चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका'

सुनिकै तोरि गोहार कोयलिया,
सुनिकै, तोरि पुकार री।

बनके पात पुरान झरे सब, आई बसन्त बहार,
मोरी आँखिन ते अँसुवन कै, होति अजहुँ पतझार।
कोयलिया, सुनिकै तोरि पुकार री॥

डारैं सजीं बौर झौंरन ते, भौंर करैं गुंजार,
मोर पिया परदेस बसत हैं, कापर करौं सिंगार।
कोयलिया, सुनिकै तोरि पुकार री॥

भरौं माँग मा सेंदुर कइसे, बिन्दी धरौं सँवारि,
अरी सेंधउरा मा तौ जानौ, धधकै चटक अंगार।
कोयलिया, सुनिकै तोरि पुकार री॥

चुनरी दिखे बँबूका लागै, राख्यों सिरिजि पेटार,
कूकनि तोरि फूँक जादू कै, दहकै गहन हमार।
कोयलिया, सुनिकै तोरि पुकार री॥

अरी जहरुई तोरे बोले, बिस कै बही बयारि,
अब न कूकु त्वै, देखु तनिकुतौ, ढाँखन फरे अंगार।
कोयलिया, सुनिकै तोरि पुकार री॥

हउकनि मोरि कंठ मा भरिले, ले टेसुन का हार,
कूकि दिहे पहिराय गरे मा, अइहैं कंत हमार।
कोयलिया, सुनिकै तोरि पुकार री॥

❖❖❖

हम कहा बड़ा ध्वाखा होइगा

- चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका'

हम गयन याक दिन लखनउवै, कक्कू संजोगु अइस परिगा।
पहिलेहे पहिल हम सहरु दीख, सो कहूँ –कहूँ ध्वाखा होइगा।।

जब गएँन नुमाइस द्याखै हम, जँह कक्कू भारी रहै भीर,
दुई तोला चारि रुपइया कै, हम बेसहा सोने कै जंजीर,
लखि भईं घरैतिन गलगल बहु, मुल चारि दिनन मा रंग बदला,
उन कहा कि पीतरि लै आयौ, हम कहा बड़ा ध्वाखा होइगा।

म्वाछन का कीन्हें सफाचट्ट, मुँह पौडर औ सिर केस बड़े,
तहमद पहिरे कम्बल ओढ़े, बाबू जी याकै रहैं खड़े,
हम कहा मेम साहेब सलाम, उई बोले चुप बे डैमफूल,
मैं मेम नहीं हूँ, साहेब हूँ, हम कहा फिरिउ ध्वाखा होइगा।

हम गयन अमीनाबादै जब, कुछ कपड़ा लेय बजाजा मा,
माटी कै सुघर महरिया असि, जहँ खड़ी रहै दरवाजा मा,
समझा दूकान कै यह मलकिन सो भाव ताव पूँछै लागेन,
याकै बोले, यह मूरति है, हम कहा बड़ा ध्वाखा होइगा।

धँसि गयन दुकानैं दीख जहाँ, मेहरेऊ याकै रहैं खड़ी,
मुँहु पौडर पोते उजर –उजर, औ पहिरे सारी सुघर बड़ी,
हम जाना मूरति माटी कै, सो सारी पर जब हाथ धरा,
उइ झझकि भकुरि खउख्वाय उठीं, हम कहा फिरिव ध्वाखा होइगा।

❖❖❖

अब मूर्ख बनों

- गोपाल प्रसाद व्यास

बन चुके बहुत तुम ज्ञानचंद,
बुद्धिप्रकाश, विद्यासागर?
पर अब कुछ दिन को कहा मान,
तुम लाला मूसलचंद बनो।
अब मूर्ख बनो, मतिमंद बनो।

यदि मूर्ख बनोगे तो प्यारे,
दुनिया में आदर पाओगे।
जी, छोड़ो बात मनुष्यों की,
देवों के प्रिय कहलाओगे।
लक्ष्मीजी भी होंगी प्रसन्न,
गृहलक्ष्मी दिल से चाहेंगी।
हर सभा और सम्मेलन के
अध्यक्ष बनाए जाओगे!

पढ़ने–लिखने में क्या रक्खा,
आँखें खराब हो जाती हैं।
चिंतन का चक्कर ऐसा है,
चेतना दगा दे जाती है।
इसलिए पढ़ो मत, सोचो मत,
बोलो मत, आँखें खोलो मत,
तुम अब पूरे स्थितप्रज्ञ बनो,
सच्चे संपूर्णानन्द बनो।
अब मूर्ख बनो, मतिमंद बनो।

मत पड़ो कला के चक्कर में,
नाहक ही समय गँवाओगे।
नाहक सिगरेटें फूँकोगे,
नाहक ही बाल बढ़ाओगे।
पर मूर्ख रहे तो आस–पास,
छत्तीस कलाएँ नाचेंगी।
तुम एक कला के बिना कहे ही,
छह–छह अर्थ बताओगे।

सुलझी बातों को नाहक ही,
तुम क्यों उलझाया करते हो?
उलझी बातों को अमां व्यर्थ में,
कला बताया करते हो।
ये कला, बला, तबला, सारंगी,
भरे पेट के सौदे हैं।
इसलिए प्रथमतः चरो,
पुनः विचरो, पूरे निर्द्वन्द्व बनो।
अब मूर्ख बनो, मतिमंद बनो।

हे नेताओ, यह याद रखो,
दुनिया मूर्खों पर कायम है।
मूर्खों की वोटें ज्यादा हैं,
मूर्खों के चंदे में दम है।
हे प्रजातंत्र के परिपोषक,
बहुमत का मान करे जाओ।
जब तक हम मूरख जिन्दा हैं,
तब तक तुमको किसका गम है?

इसलिए भाइयो, एक बार,
फिर बुद्धूपन की जय बोलो।
अक्कल के किवाड़ बंद करो,
अब मूरखता के पट खोलो।
यह विश्वशांति का मूलमंत्र,
यह राम–राज्य की प्रथम शर्त।
अपना दिमाग गिरवीं रखकर,
खाओ, खेलो, स्वच्छंद बनो।
अब मूर्ख बनो, मतिमंद बनो।

❖❖❖

हिरोशिमा

- सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

एक दिन सहसा
सूरज निकला,
अरे क्षितिज पर नहीं
नगर के चौक
धूप बरसी,
पर अन्तरिक्ष से नहीं,
फटी मिट्टी से।
छायाएँ–मानव–जन की–
दिशाहीन,
सब ओर पड़ीं–वह सूरज–
नहीं उगा था पूरब में, वह–
बरसा सहसा–
बीचो–बीच नगर के।
काल–सूर्य के रथ के–
पहियों के ज्यों अरे टूट कर–
बिखर गये हों–
दसों दिशा में।
कुछ क्षण का वह उदय–अस्त।
केवल एक प्रज्ज्वलित क्षण की
दृश्य सोख लेने वाली दोपहरी
फिर?
छायाएँ मानव–जन की–
नहीं मिटीं लम्बी हो–हो कर,
मानव ही सब भाप हो गये।
छायाएँ तो अभी लिखी हैं,
झुलसे हुए पत्थरों पर,
उजड़ी सड़कों की गच पर।
मानव का रचा हुआ सूरज,
मानव को भाप बना कर सोख गया।
पत्थर पर लिखी हुई यह–
जली हुई छाया,
मानव की साखी है।

❖❖❖

बादल-राग

- सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

झूम–झूम मृदु गरज–गरज घन घोर,
राग–अमर! अम्बर में भर निज रोर।
झर झर झर निर्झर–गिरि–सर में,
घर, मरु तरु–मर्मर, सागर में,
सरित–तड़ित–गति–चकित पवन में,
मन में, विजन–गहन–कानन में,
आनन–आनन में, रव घोर कठोर,
राग–अमर, अम्बर में भर निज रोर।
अरे वर्ष के हर्ष!
बरस तू बरस–बरस रसधर,
पार ले चल तू मुझको।
बहा,दिखा मुझको भी निज–
गर्जन–भैरव–संसार।
उथल–पुथल कर हृदय
मचा हलचल–
चल रे चल–
मेरे पागल बादल।
धँसता दलदल,
हँसता है नद, खल–खल,
बहता, कहता कुलकुल, कलकल–कलकल।
देख–देख नाचता हृदय,
बहने को महा विकल बेकल।
इस मरोर से –इसी शोर से
सघन घोर गुरु गहन रोर से।
मुझे गगन का दिखा सघन वह छोर।
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर।

❖❖❖

प्रतीक्षा नये जीवन की

- डा. शम्भु नाथ

सिंगारदान में पड़ी–
राख की गरमाई–
ठन्डी पड़ गयी है–
जैसे बर्फानी सर्द से ठिठुरी लाश।
बदरंग गुलदस्तों के बासी फूल–
भी दम तोड़ चुके हैं–
बेदवा–दारू के मरीजों की तरह ।
बीते वक्त ने
कैक्टस में लटककर,
कर ली है, आत्महत्या।
किसने कहा
सलीब का क्राईस्ट जिन्दा हैं?
सारा समय
यूँ ही बीत गया।
अर्थ ढूँढ़ते–ढूँढ़ते,
सब कुछ रीत गया।
यह दुनियाँ
तो एक कफनचोर मुरदघट्टी है–
जहाँ कफन खसोटी ही धरम है।
तभी कफन जोहता है,
याचना में फैला।
कोई सतजुगी पंजा,
अभिमन्यु को रोज घेरते हैं।
सधे–घुटे महारथी,
कर्ण को कहाँ मिलता?
है, आखिरी मौका...

मुर्दे जो हमने गाड़े थे
सुना,
कब्र फोड़कर जिन्दा निकल आये।
बेकार ...
जहाँ थे, अच्छे थे, भले थे।
फिर बेबस भीड़ में
शामिल हो गये।
यहाँ जीना–
बस गरमाई खोना है।
क्षण–क्षण जलकर
सिंगारदान की राख होना है।
सुधियों के अल्हड़ फकीरे
पीले पत्तों को उड़ाते हैं,
गर्द–गुबार फैलाते है।
ऐसा नहीं होगा–
कि राख से कुछ चिनगियाँ–
छिटक पड़ें,
लहक उठे
मेरे पत्तों से लपट।
आग ...
रोशनी...
गरमाई...
चाहता हूँ
वही आखिरी साँस लूँ–
जहाँ से शुरुआत हो–
एक नये जीवन की।

❖❖❖

मेरा बसन्त

- योगेश प्रवीन

फूलों पर, आयी है बहार,
कोयल की मदमस्त पुकार।
महका–महका,रितु का सिंगार,
बहकी–बहकी,डोले बयार।

वन,उपवन में छाया बसन्त।
मेरा बसन्त, बस तुम ही तुम।।

गमके बगिया संग अमराई,
भँवरो ने छेड़ी शहनाई।
फिर वो ही दिन, वो ही उमंग,
अपने वादे पर रितु आई ।

तुमको लेकिन नहीं विचार।
मेरा बसन्त,बस तुम ही तुम।।

कलियों ने खोले नैन नवल,
लहराए फूल भरे आँचल।
कुछ दिन के हैं ये राग रंग,
जो कुछ है आज, होगा नहीं कल।

कुम्हला न जाएँ कहीं पुष्पहार।
मेरा बसन्त, बस तुम ही तुम।।

इतने पर भी जो न आए तुम,
सब कुछ होगा, गुमसुम–गुमसुम।
मन का मौसम विरही हो तो,
कैसी रोली–कैसा कुमकुम।

कैसा बसन्त, कैसी बहार।
मेरा बसन्त बस तुम ही तुम।।

❖❖❖

आने याद लगीं रस भीनी

- चक्रपाणि पाण्डेय

आज सबेरे बैठ मुंडेरे, कागा बोला रे।
बीती हुई प्रीति पोथी का पन्ना खोला रे।।

बोल सुना, सोते से जागा, टूट गया सपना,
आशा कहे कि अब तो निश्चय आयेगा अपना।
कही–सुनी बातों पर पगला मनुआ डोला रे।
आज सुबेरे बैठ मुंडेरे, कागा बोला रे।।

आने याद लगीं रस भीनीं, वे भीगी रातें,
बिछी बिसातों पर शह पड़ती,फिर होती मातें।
कुण्डलियों के पहले पद में पढ़ते रोला रे।
आज सुबेरे बैठ मुंडेरे, कागा बोला रे।।

बिना बजाए बजी बाँसुरी, बहकी शहनाई,
बहुत पुरानी परी कथाओं की सुधि हो आई।
किसने मिसिरी की मिठास को मन में घोला रे।
आज सबेरे बैठ मुंडेरे, कागा बोला रे।।

❖❖❖

स्वर्ण-परी

- कृष्ण मुरारी 'विकल'

आश्वासन की वंशी ने फिर, मधुरिम तान भरी है।
सुन उतरी छब्बीस जनवरी, बन कर स्वर्ण–परी है।।

स्वर है वही कि जिसमें नूतन–
सृजनात्मक भावुकता हो।
सत्य–न्याय एवं नैतिकता–
की जिसमें सात्विकता हो।
आशाएँ तब साकार बनें,
फिर चतुर्दिशा त्योहार मनें।

लगे कि गूँजी धरती–अम्बर, सुखदा स्वर–लहरी है।
सुन उतरी छब्बीस जनवरी, बन कर स्वर्ण–परी है।।

जली दूध से बिल्ली दधि भी,
फूँक–फूँक कर पीती है।
संकट का सन्देह–काल वह–
छींक–छींक कर जीती है।
आशंका अतीत–भोगी हैं,
हर भोगी बनता योगी है।

कीर्ति–कामिनी कंचन पाकर, मति अन्धी–बहरी है।
सुन उतरी छब्बीस जनवरी, बन कर स्वर्ण–परी है।।

लोक तन्त्र की धातु से ढँका–
शिर–आपाद हमारा है।
जियो और जीने दो युग को–
यही हमारा नारा है।
तुम फौलादी एकता रचो,
दम्भ–द्वेष–छल–छद्म से बचो।

गणतन्त्र जहाँ पूजा जाये, आजादी बनी अनुचरी है।
सुन उतरी छब्बीस जनवरी, बन कर स्वर्ण–परी है।।

❖❖❖

न कोई ऐसा इतिहास रहा

- गिरीश पाण्डेय

मैं तो डायरियाँ लिखता अनायास रहा,
मुझे क्या पता कि ये उपन्यास रहा।

जीवन में लड़ाइयाँ रहीं इतनी तरह की,
चन्द्रगुप्त,चाणक्य, कभी, वेदव्यास रहा।

न जीवन से दूर, न आध्यात्मिकता से,
ऐसा ही सहज मेरा संन्यास रहा।

आँखों को खोल के ही किया है ध्यान,
हमेशा ही विवेक व होशो–हवास रहा।

जब भी सृजन का रहा जुनून,
तन या मन पर न कोई लिबास रहा।

हमने तो सब की भाषा समझी है,
जो भी पेड़–पौधा, पशु–पक्षी आसपास रहा।

अब विश्वयुद्ध व्यंग्य व संवेदनाओं से जीता जाएगा,
भले ही अब तक न कोई ऐसा इतिहास रहा।

व्यक्ति का नहीं, मुद्दों का विरोध करता हूँ,
किसी के प्रति मन में न एहसासे खटास रहा।

मैं चलता रहा, गजलों में पूरा संसार भरके,
आग–पानी,मौसम,समाज,खटास–मिठास रहा।

चारों ओर तू ही तू तो है छाया हुआ,
मैंने जिधर देखा, तेरा ही उजास रहा।

हर पल में नयी शुरुआत की संभावना रही,
हर इक साँस में एक पाया शिलान्यास रहा।

❖❖❖

मेरी अन्तिम चाह यही है

- दयाशंकर अवस्थी 'देवेश'

मेरी अन्तिम चाह यही है।
चाँद हँसे जब नील गगन में, देख उसे तब तुम मुसका दो,
मेरी अन्तिम चाह यही है।

ग्रीष्म काल की दोपहरी में, जब सारी पृथ्वी सो जाती,
कोयल अपने मधुर स्वरों में,कुहू–कुहू का राग सुनाती,
उसी समय तुम एक बार, मेरे गीतों के मान जगा दो।
मेरी अन्तिम चाह यही है।

काले बादल व्याकुल होकर, नभ में भीषण शोर मचाते,
मेरे दुख को परिवर्तित कर, निज दुख में हैं अश्रु बहाते,
एक बार कर याद हमारी,संचित चक्षु नीर बिखरा दो।
मेरी अन्तिम चाह यही है।

रवि स्वर्णिम किरणों को छू, सरसिज स्वर में हैं, मुस्काते,
लेकिन हृदय सरोवर के सित–कुमुद बिचारे हैं, कुम्हलाते,
चन्द्रानन की छटा बिछाकर,मुरझाये ये फूल खिला दो।
मेरी अन्तिम चाह यही है।

एक बार तेरे जीवन में, मैं अनुपम मधुमास भरूँगा ,
सोई हुईं कल्पनाओं को, एक बार फिर सजग करूँगा,
तेरे लिये बना पथ राही, अतः प्रिये अब धैर्य बँधा दो।
मेरी अन्तिम चाह यही है।

❖❖❖

कर रहा कब से? प्रतीक्षा प्रिय! तुम्हारी

- विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद'

नयन के शुचि पाँवड़े मैंने बिछाये,
द्वार के तोरण–कलश सब विधि सजाये।
हृदय–वीणा के स्वरों को साध साथी,
गीत स्वागत के मनोहर विविध गाये।

किन्तु निज शुभ आगमन से मीत!तुमने,
क्यों न कीं मन की व्यथाएँ दूर सारी।
कर रहा कब से? प्रतीक्षा प्रिय! तुम्हारी।।

याद में अगणित दिवस–निशि–मास बीते,
थक गये दृग भी निरन्तर अश्रु पीते।
धैर्य का भी बाँध अब ढहने लगा है,
यह न निश्चित कौन हारे कौन जीते?

प्राण–पंछी आज उड़ने को विकल है,
कठिन सहना वेदना का भार भारी।
कर रहा कब से? प्रतीक्षा प्रिय! तुम्हारी।।

छोड़ दूँ अब मैं मिलन की क्या शुभाशा,
बढ़ रही सब ओर से केवल निराशा।
हो सकी पूरी न अभिलाषा अभी तक,
बुझ न पायी प्रेम की पावन पिपासा।

स्वप्न में भी था कभी मैंने न सोचा,
भूल जाओगी तुम्हीं अपना पुजारी।
कर रहा कब से? प्रतीक्षा प्रिय! तुम्हारी।।

❖❖❖

क्या जानें?

- विजयशंकर शुक्ल

तट की सीमा रेखाओं से ही जिसे काम,
नौकारोही जल की गहराई, क्या जाने?
रंगीन स्वप्न सी रात–चाँद की बातचीत,
दिन खुलते गूँजी उपवन में बन प्रणय गीत।
मलयानिल ने कर और दिया उन्माद सजग,
कलियाँ मुसकाई षट्पद धाये हो अभीत।
मदमस्त भ्रमर हँसते फूलों की डाली पर,
काँटों ने भी है सेज बिछाई,क्या जाने।
नौकारोही जल की गहराई, क्या जाने?
पृथ्वी के मुख को देख हृदय के भाव ताड़,
खोजता खनिज के लिए आज मानव पहाड़।
रस का सागर नर अन्तर में लहराता है,
पर क्रूर शुष्कता अपनाये जीवन उजाड़।
शशि आँचल की छलना में लिपटा हुआ मनुज,
सागर ने कब–कब बाँह उठाई, क्या जाने?
नौकारोही जल की गहराई, क्या जाने?
नयनों के जल से धुले अधर की धुली हँसी,
ज्यों नभ में पावस बाद शरद चाँदनी लसी।
है मिलन स्वर्ण में देता विरह सुगंध मिला,
पूरित पराग मन–कलिका की सुषमा विकसी।
मधु–पवन कि जो फैलाता जग में वह सुवास,
उसमें अन्तर्हित विरह–बड़ाई,क्या जाने?
नौकारोही जल की गहराई, क्या जाने?
धरती ने पाया रवि किरणों का सदय दान,
पर नहीं कभी जागा उसमें सत्तभिमान।
तृष्णा के ही उच्छ्वास जलद बनकर बरसे,
घन चातक के संबंधों का अविकल विधान।
स्वाती जल–कण की चाह सँजोए चातक मन,
घन ने कैसी योजना बनाई, क्या जाने?
नौकारोही जल की गहराई, क्या जाने?

❖❖❖

बचपन के दिन

- महेशचंद्र द्विवेदी

कहते हैं बड़े मधुर होते थे, बचपन के दिन,
निर्द्वंद्व और स्वच्छंद हो बीतते थे, पल–छिन।
नमक–तेल–मिर्च की न रहती थी कोई चिंता,
रोग–व्याधि में भी होती बस क्षणिक परवाह।

कभी–कभी मुझको भी याद आते हैं वे दिन,
पर सचमुच ऐसे तो नहीं सुहाते हैं वे दिन।
दुधमुँहा था तब डराता था परछाईं का भूत,
सोने पर सपने में दौड़ाता था बाघ या ऊँट।

बच्चा हुआ तब पल–पल दबाना पड़ता था मन,
स्वमन की करने पर डाँट खाता था निशिदिन।
बड़े भाई–बहिन हँसते हुए जाते थे नौटंकी–मेले,
अभी छोटे हो कहकर, मुझे छोड़ जाते थे अकेले।

अपने काम कराने को बड़े लोग थे धौंसियाते,
न करने पर हम पिटते, खिसियाकर रह जाते।
कक्षा के फेलियर बड़े लड़के तक खिल्ली उड़ाते,
भय और हीनतावश हम लज्जित–मूक रह जाते।

पुरुषत्व का जागरण भी बना ग्लानि का कारण,
कामिनी की अतीव कामना पर, न कोई निवारण।
अज्ञानता व संकोच से जन्मी ऐसी–ऐसी आशंकाएँ,
जो करतीं थीं दुष्प्रभावित सोच की समस्त धाराएँ।

होता पढ़ाई का चक्कर जब आँखों में भरती निंदास,
प्रतियोगिता में न आने की चिंता से रहते थे उदास।
युवावस्था में रहता धन एवं मान प्रतिष्ठा का चक्कर,
पारस्परिक संबंधों में समन्वय बिठाना रहता दुष्कर।

जीने की कला सीखने में लग जाते हैं बरस साठ,
तब समझ पाते हैं हम, प्रसन्न मन जीने का पाठ।

❖❖❖

गजल

- चन्द्रमणि त्रिपाठी

1

सूरज बैठा रहा रुआँसा, अपनी राम मड़ैया में,
दिन भर हँसता रहा कुहासा, अपनी राम मड़ैया में।
इस कोने से उस कोने तक, दुखवा मन भर रहता है,
सुख है तोला रत्ती–माशा, अपनी राम मड़ैया में।
अपने को परिभाषित करना कितना मुश्किल है,यारो,
चलती है दूजे की भाषा, अपनी राम मड़ैया में।
किस्मत की खण्डित रेखाएँ कैसे मुझको छोड़ेंगी,
काट चुकीं हैं दूध–बताशा, अपनी राम मड़ैया में।

2

गाँव भीतर से घुना है, दोस्तो,
शहर लोहे का चना है, दोस्तो।
उस महल के द्वार पर दस्तक न दो,
वह सियासत से बना है,दोस्तो।
जो हमारा ही लहू पीता रहा,
वह हमारा सरगना है, दोस्तो।
रीढ़ की हड्डी नहीं गिरवीं रखी,
इसलिए यह सिर तना है, दोस्तो।

3

ठोकरों पर हो गए हैं, आजकल,
स्वप्न बेघर हो गए हैं, आजकाल।
आजकल हम मुस्करा सकते नहीं,
गम सिकन्दर हो गए हैं, आजकल।
छत सियासत की बपौती हो गई,
लोग बंदर हो गए हैं, आजकल।
दर्द का धनुहा उठाओ राम जी,
हम स्वयंवर हो गए हैं, आजकल।
आँसुओं को राजधानी सौंप दी,
फिर दिगम्बर हो गए हैं, आजकाल।

❖❖❖

खिलते और खेलते फूल

- पं.नरेन्द्र शर्मा

खिलते और खेलते फूल।
भारत माता का भविष्य हो,
नव युग के तुम नए शिष्य हो,
बढ़ो भारती के आँचल में,
हर दिन दूने रात चौगने–
जीवन की डाली पर झूल।

नभ में फहरे सदा तिरंगा,
बहती रहे देश में गंगा,
भारत की सतरंगी धरती,
हर भारतवासी की माता,
इसे कभी मत जाना भूल।

कभी पराई आस न करना,
मेहनत से अपना घर भरना,
बूँद पसीने की बो कर,
तुम देखोगे सोना उगलेगी,
इस धरती की मिट्टी, धूल।

सदा बाँटकर खाना, भाई,
कभी न करना बुरी कमाई,
हँस कर फूल खिलाते, गाते,
हिल–मिलकर रहना जीवन में,
पथ में कभी न बोना शूल।

बोलो मीठे बोल, आम से,
आँख चुराना नहीं काम से,
भारत माता की संतानों,
सेवक और सिपाही बनना,
हर दुश्मन के लिए बबूल।

❖❖❖

साल दर साल

-भवानीप्रसाद मिश्र

साल शुरू हो दूध दही से,
साल खत्म हो शक्कर घी से,
पिपरमेंट, बिस्किट मिसरी से,
रहें, लबालब दोनों खीसे।

मस्त रहें, सड़कों पर खेलें,
नाचे–कूदें, गाएँ–ठेलें,
ऊधम करें, मचाएँ हल्ला,
रहें सुखी, भीतर से,जी से।

साँझ, रात, दोपहर, सवेरा,
सबमें हो, मस्ती का डेरा,
कातें सूत, बनाएँ कपड़े,
दुनिया में क्यों डरें किसी से।

पंछी गीत सुनाएँ, हमको,
बादल–बिजली भाए, हमको,
करें, दोस्ती पेड़ फूल से,
लहर–लहर से नदी–नदी से।

आगे–पीछे, ऊपर–नीचे,
रहें,हँसी की रेखा खींचे,
पास–पड़ोस, गाँव,घर,बस्ती,
प्यार ढेर भर करें, सभी से।

❖❖❖

लघुगीत

- एम. जोशी 'हिमानी'

1

कभी दिखा था इन आँखों में,
गौतम को अक्स अपना,
दर्पण तब बना था यही,
ज्ञान और वैराग्य का,
जीवन फिसला जा रहा है,
तुमको भी यहाँ तक आना है,
खड़ा हूँ स्वागत में तुम्हारे–
सत्य की बाहें फैलाये।

2

श्रम से उपजे अप्रतिम सौंदर्य की–
स्वामिनी थी, वह,
आँचल में ममता–
संजोती थी, वह,
निडरता और स्वाभिमान की
मूरत थी वह,
केशव की इस युग की
बुआ कुन्ती थी, वह,
कोई और नहीं,

3

उन्नत हिमशिखरों को–
छूने को जी चाहता है,
पंछी बन उन्मुक्त गगन में–
थिरकने को जी चाहता है।
धूनी रमाये कैलाश में शंकर से–
मिलने को जी चाहता है,
गोपी बन कान्हा की मुरली पर–
थिरकने को जी चाहता है।

4

उजली–उजली सी सुबह,
गुनगुनाती शाम,
इंतजार में हमने–
कर ली, उम्र तमाम।
हकीकत बन, सँवार ली तुमने,
जिन्दगी किसी और की।
मेरे सँवरने को
तेरा ख्याल ही बहुत है।

❖❖❖

कुछ लिखा दिल से आज

- सुमिता 'कमथान'

मासूमों की बस्ती.....
देखो तो कितनी सस्ती.....
इन गलियों में ना आना ए चाँद कभी तू डेरा डालने.....
चूंकि ये गलियाँ हैं कुछ जिंदा लाशों की मिशालें.....
टाट के परदों से झाँकती असहाय भोली आँखें,
लाखों झूठे सपने बुनती ख्वाहिशें,
एक वक्त की दो मोटी रोटी के लिए जूझते नन्हें बच्चों के कोमल हाथ.....
बिन बुलाए लाडले, न खिलौने ना पालने.....
टूटी दीवारों में अपनी असमत को छिपाती मजबूर बेटियाँ.....
मिट्टी के घरौंदों से दिल बहलाते बच्चे, दिल के कितने सच्चे.....
दूध की कमी से बिलखते नौनिहाल.....
टूटे खटोल.....
बोरी के बिछौने, अनिद्रा से ग्रसित सब बेहाल.....
गंदे नालों के किनारों की ये गलियाँ, लाखों बीमारियों से भरी– जिंदगी.....
कितनी है, बदहाल.....
लगती हैं अक्सर मेरे दिल को सालने.....
कि इन गलियों में ना आना ए चाँद कभी डेरा डालने.....
कि शेम से हो जाए ना तू तार–तार.....
ना आना.....
ना आना.....
ना आना ए चाँद इन गलियों में ना आना कभी तू डेरा डालने.....
कभी तू फेरा डालने.....

❖❖❖

दृढ़ प्रतिज्ञा

- डा.अमिता दुबे

वे देखना चाहते हैं,
हमारी आँखों में आँसू।
सुनना चाहते हैं,
एक दबी घुटी सिसकी।
और दिल की गहराई से,
उठने वाली एक ठण्ड आह।

क्योंकि,
वे मानते हैं, हमें–
प्रतिनिधि–
अबला नारी का।
जिसके अस्तित्व पर रहता है–
हर क्षण खतरा, बस खतरा,
कभी–कभी तथाकथित खतरा भी।

यह खतरा –
अलग–अलग तरह से मंडराता है,
कभी आर्थिक तो कभी सामाजिक,
कभी पारिवारिक तो कभी राजनैतिक।
कभी जलन का तो कभी शोषण का,
खतरा बस, खतरा ही खतरा।

लेकिन–
उन्हें नहीं मालूम–
जिसने हमारी आँखों में–
सपने सँजोये हैं।
हमारी पलकों को चूमकर,
उसी ने सारे दुःख, सारे आँसू–
सोख लिये हैं।
कभी पिता,कभी भाई,कभी पुत्र–
बनकर।
कभी मित्र बनकर, कभी–
सहयोगी बनकर।
अपनी आँखों के आँसू–
मुस्कान के फूल बनाकर,
संसार में बिखेरने को
हम दृढ़प्रतिज्ञ हैं।
क्योंकि हमारा विश्वास है,
कुरुक्षेत्र–धर्मक्षेत्र में–
जीत हमेशा–
सत्य, कर्तव्य और निष्ठा की
होती है।
इतिहास साक्षी है–
दुःशासन–दुर्योधन के सैन्य बल
को छोड़,
मुरलीधर के चक्र की प्रतिष्ठा
सदैव दृढ़प्रतिज्ञ, दृढ़ आस्था
वाले–
अर्जुन के साथ ही रहती है।

❖❖❖

द्वार पर आने तो दो

- रामा आर्य 'रमा'

(1)

ऋतुराज की दुंदुभि बाज उठी,
पतझार को होश में आने तो दो।
भयभीत लता, द्रुम–पल्लवों को,तृन–
तापित ताप मिटाने तो दो।
प्रत्यंचा की डोर है ढीली अभी,
है, अनंग को चाप चढ़ाने तो दो।
नव आरती दीप जलाओ नहीं,
प्रिय को प्रिय द्वार पर आने तो दो।

(2)

तन वैभव हीन इन पादपों को,
मन द्वंद्व का द्वेष मिटाने तो दो।
वन, कुंजन, बाग, बगीचियों में,
मकरंद, पराग लुटाने तो दो।
मधु परियाँ अभी इठलायें न यों,
मधु किंकिरों को कुछ गाने तो दो।
अनुराग की तान न छेड़ो प्रिये,
प्रिय को, प्रिय द्वार पर आने तो दो।

(3)

नव रंग धरा है सँवार चली,
रस, अम्बर को बरसाने तो दो।
नव स्वर्णिम प्रात बिलोकन को,
पथ सांध्य का द्वार सजाने तो दो।
नव योग संयोग के पालने में,
रस रीति को बाँध, झुलाने तो दो।
रतिराज की सेज सजाओ नहीं,
प्रिय को, प्रिय द्वार पर आने तो दो।।

❖❖❖

सपने सँवर गए

- डा. ऋचा सत्यार्थी

पहचानी–सी गंध हवा के साथ चली आई,
आँखों में सपनों–भरी रात चली आई।
महक उठा शाम का रंग
क्षितिज पर–
इन्द्रधनुष उतर आए
गीत कई मुसकराए
मन के शहर यादों की बारात चली आई।
रात के आँचल में हँसकर–
उजाले बिखर गए,
सपने सँवर गए,
तुम हँसे तो सहर की बात चली आई।
कुछ कहा चुपके हवा ने–
फिजाएँ महक गईं,
यादें बहक गईं,
मौसम में खुशबू की सौगात चली आई।
पिया गए परदेश
पनघट पर–
प्यासी रह गई पनिहारिन,
निंदिया भई बैरिन,
अँखियों में बे मौसम बरसात चली आई।
पहचानी–सी गंध हवा के साथ चली आई।

❖❖❖

तो.....क्या होता?

- डा.नलिनी पुरोहित

सोचती हूँ.....गर,
न होते तुम,
तो क्या होता.....
लहरें क्यों कर संगीत बनती,
हवा धकड़न का झोंका,
पतझड़ क्यों कर,
बसन्त लगता।
कण–कण फलों सा महकता,
आसमान क्यूँ कर,
इन्द्रधनुषी लगता।
वीरान सरगम सा चहकता,
धूप में चाँदनी का आभास,
क्यूँ कर लगता।
रात तारों का झुमका
सोचती हूँ.....गर
न होते तुम
तो क्या होता.....
बगैर उपमा,
धकड़न के
दिल हो जाता
सिर्फ शरीर का हिस्सा
सोचती हूँ.....गर।

❖❖❖

धरती-पहाड़

- डा. विद्याविन्दु सिंह

माँ धरती चुप
सामने/अहंकार का फन उठाए पहाड़।
वह सिर झुका लेती
उसी की देह से निकलकर
उसी पर तो खड़ा है।
वह उसे छाया देने के लिए,
उगाती है वनस्पतियाँ,
उस पर बिछाती है हरियाली।
पर पहाड़ झुकना नहीं जानता,
वह अपना पथरायापन देकर,
निरंतर उसे अहल्या बनाता।
धरती चुप अहल्या बनी,
बाट जोहती रहती है राम की।
जो इस शिलापन के विरुद्ध अकेले खड़े हो गए थे,
यह धरती गांधारी बनकर भी,
इस पहाड़ के अहं को तुष्ट नहीं कर सकी।
अपनी सौ–सौ संतानों को
माँ–बाप के अंधेपन का दर्द देनेवाली गांधारी की,
जिस पातिव्रत्य की दुहाई देते हैं,
ये जमे हुए पहाड़
वह क्या जाने,
अपने पुत्रों के मन में अँधेरा भरने का–
कितना पश्चाताप/झेला था गांधारी ने।
वे क्या जानें कि
उनके दंभ ने कितने दुःशासन उगाए हैं।
कृष्ण तो उस दंभ के
विरोध में फूटे आक्रोश के स्वर हैं।
इस धरती को आज उनकी
वंशी की ही नहीं,
शंख की भी/ध्वनि चाहिए।

❖❖❖

पुरखों की वसीयत

- प्रो. मालती दुबे

आज पुनः
अश्रु लिए सो रही हूँ –माँ,
वे तो सुदूर तारों के बीच
छिपे हैं,
भला मैं कहाँ छिपूँ माँ ?
उनका आश्वासन मुझे,
विजय रथ की ओर
इंगित करता है।
तुम आज भी याद आती हो माँ
तुम्हारे दिए संस्कार
बच्चों में उड़ेल दिए हैं।
बस! मुझे मौन रहने की शक्ति
देती रहना,
सभी अहम ईर्ष्या का
दुर्भाव न आने देना,
अन्यथा तुम्हारा स्नेह
बह जायेगा,
ममत्व निस्तेज हो जायेगा।
और
तब
पुरखों की वसीयत
कुम्हलाती देख
मेरी आँखें
झुक जायेंगी।

❖❖❖

सुन्दर अपना संसार

- ऊषा मिश्रा

ईश्वर ने दिया हम इन्सानों को उपहार, जिससे बना सुंदर अपना संसार।
इतनी शांत होते हुए भी कितना कुछ कह जाती है प्रकृति,
हर पल दर कदम सुधार देती है ये हमारी गलती ।
वो झरनों का गिरना, सिखलता है गिरकर संभलना।
वो पंछियों का सुबह–सुबह उड़ना –
सिखाता हमें है,
महत्व काम को देना।
क्या कहता है ये सूरज? उठो, चमको, खुद जलो दूसरों को रोशनी देना।
वो फल के साथ पेड़ों का झुकना, सिखाता है औरों के लिए जीना।
वो नदी का समदंर में मिल जाना,
कहे बड़ों के लिए
खुद को न्योछावर कर देना।
कितना कुछ सिखाती है ये प्रकृति,
हर बार अपनी याद दिलाती है प्रकृति।
आज़ हम हैं कल कोई और होगा, पर ये जग जहाँ है, वैसा ही रहेगा।
कहेगा, हर बार लो सीख मुझसे,
न करो तकरार, रहो एकजूट दिल से।
चट्टान सा बलवान बनो तो जानें, तूफान सा गतिमान बनो तो जानें,
पेड़ काटना, जीव मारना सबको आता है,
अपने हाथ से एक चिड़िया जीवित करो तो जानें...।

❖❖❖

ताकतवर

- पंकज सिंह

लगभग सब कुछ जानने के बावजूद,
जाहिर यही किया जाता है कि आपको कुछ नहीं मालुम।
न जानने की भंगिमाएँ आपको ताकतवर लोगों के बीच–
बनाती हैं, निरीह और प्रशंसा के योग्य।
आप उन्हें यकीन करा लेते हैं कि कहीं कोई–
स्वाँग नहीं है, स्मृति और अतीत से छुटकारा पा चुके,
आप अब निरापद हैं, हर कहीं स्वीकार योग्य।
तारों भरी रात में कोई डरावना ख्याल, नींद के–
मुश्किल पठारों में अनंत विलाप रोशनी के–
तलघरों में छटपटाते खून–आलूदा सवाल,
नहीं बनेंगे, आप?
मन के बरगदों में खाली हैं, घोसलें, चली गईं–
लालसाएँ चिड़ियाँ, रहस्य भरी दिशाओं में,
भीतर बाहर के दृश्यों से हहराता बाढ़ के पानियों सरीखा–
दौड़ता जाता है, समय और एकबारगी थम जाता है।

स्मृति में उभरते हैं, अब भी पिछली ऋतुओं के स्वप्न,
कचोटती–सी गूँज में रल–मल,
ज्यों धान की पकी फसलें बजती हैं, तेज हवाओं में,
पेड़ों की डालें कड़कड़ाती टूटती हैं
अतीत के घमासानों की धूल झरने लगती है।
आपकी आत्मा की गोपनीय सुरंगों में–
छिपा ले जाना ही कला है,
आप ताकतवर लोगों के काम आते हैं,
बदले में वे, आपको ताकतवर होने का दर्जा देते हैं।

❖❖❖

कैसे स्वीकारूँ

- शैलेन्द्र प्रताप सिंह

तुम सितारा हो,
टिमटिमाती रहो आँखों में।
तुम्हें जिस्म बनाकर देखा जाय,
मुझे स्वीकार नहीं।
तुम नीड़ हो,
घरौंदा तुमसे बसेगा।
दहलीज पर ही तुम्हें झकझोर दिया जाय,
मुझे स्वीकार नहीं।
तुम जननी हो,
मातृत्व का गौरव तुम्हारा अपना है,
बेवजह तुम्हारी कोख में बो दिये जायें–
ढेरों बच्चे–
मुझे स्वीकार नहीं।

❖❖❖

कठिनाइयों की परवाह करो नहीं

- महेश प्रसाद पाण्डेय 'महेश'

सहते नित कष्ट रहे फिर भी,
निकली मुख से कभी आह नहीं है।
चल के शुचि पंथ पे आगे बढ़े,
अपनाई असत्य की राह नहीं है।
जुड़ा भूमि से मैं पला भूमि पे हूँ,
नभ मण्डल पाने की चाह नहीं है।
मिल पाए जो थाह न थाहने से,
कोई ऐसी समुद्र में थाह नहीं है।

बीत तो आधी ये उम्र गई,
रटते–रटते नित नाम तुम्हारा।
पाया नहीं सुख का त्रण एक,
मिला दुख से न कभी छुटकारा।
कौन सा होगा कहो दिन वो,
जब दोगे हमें भरपूर सहारा।
मानूँगा हार कदापि नहीं, भले–
ऐसे कटे, यह जीवन सारा।

करते निज कर्म रहो अपना,
फल की कभी भूल के चाह करो नहीं।
कितनी ही विपत्तियाँ क्यों न मिलें,
फिर भी मुख से कभी आह करो नहीं।
जितना श्रम से मिले मस्त रहो,
पर का धन देख के डाह करो नहीं।
नित थाह लगाते रहो भव की,
कठिनाइयों की परवाह करो नहीं।।

❖❖❖

प्रेम की परिभाषा

- जिओ लाल जैन

प्रेम निःशब्द आवाहन है,
विश्वास है अन्तर्मन की पुकार है,
प्रेम मधुमयी झरना है,
महकती सुगन्ध है,
दैवीय है, नैतिक है,
प्रेम कविताओं में अंलकार है,
संगीत है, शबनमी अहसास है,
प्रेम एक शोख मुस्कान है,
बहकती, लहराती मौज है,
हवा की तरह भागता है,
जहाँ यह रुकता है वहाँ,
समन्दर को अपनी बाँहों में–
लेकर एकान्त किनारे जाकर,
भिगो–भिगो जाता है।
प्रेम तकदीर भी और–
तस्वीर भी है,
जब अनचाहे रंग में रंग जाए,
तो तकदीर और जब मन चाहे रंग में–
रंग जाए तो आकर्षक चित्र भी है,
हिना का रंग कितना भी सुर्ख क्यों न हो,
प्यार की सुर्खी से गहरा नहीं होता।

❖❖❖

चलो गाँव की ओर

- गिरीश चन्द्र वर्मा

चलो गाँव की ओर।
भारत को समृद्ध बनाना हो,
निरक्षरता को दूर भगाना हो,
मुक्ति मिले अँधियारे से,
ऐसा इक दीप जलाना हो,
तो चलो गाँव की ओर।
नगरों मे बढ़ता कोलाहल,
वेग से फैल रहा प्रदूषण,
फैशन के नाम पर अंग प्रदर्शन,
सबसे छुटकारा पाना हो,
तो चलो गाँव की ओर।
भाग दौड़ के इस जीवन से,
कल पुर्जों के सम्मोहन से,
घुटनशील जीवन से हटकर,,
अलग,अगर सुख पाना हो,
तो चलो गाँव की ओर।
बहुखण्डी भवनों का जीवन,
बाधित करना है, धूप, पवन,
दुर्लभ है सूरज का दर्शन,
पुरवाई को गले लगाना हो,
तो चलो गाँव की ओर।
मर्यादित सीमा के अंदर,
लौटें भवनों से टकराकर,
जब न कहीं पर दिखलाई दे,
अंतरिक्ष का ओर–छोर,
तो चलो गाँव की ओर।

❖❖❖

सजने लगा साज बसंत

- श्रीरमन

सरसों के हैं पाँवड़े पीत बिछे,
चहकी खगों में अमराइयाँ भी।
लतिकाएँ न शोभित चूड़ियों से,
भरी दीख रहीं तरु–डालियाँ भी।
हुईं भाव विभोर सी कोयलें, पंचम–
राग में देती बधाइयाँ भी।
सजने लगा साज बसंत, लगी–
बजने अलि की शहनाइयाँ भी।

कुंज–कुंज खुल–खिल खेलता अनंग सखा,
शैशव की शोभा दिखला रहा बसंत है।
पहने झिंगोला पीत,अलियों, तितलियों को
कर–पुष्प पर बिठला रहा बंसत है।
बोली–अनबोली में न जाने किसे, किसलिये,
कोकिल के स्वरों में बुला रहा बसंत है।
बाल–सुषमा निहार जग हो रहा निहाल,
अवनि के अंक इठला रहा बसंत है।

सब ओर मैं किंशुक पुष्प खिले,
हँसती सी पलाश की डालियाँ हैं।
अलि प्रेमियों के लिये अमृत पूरित
शोभित पाटल प्यालियाँ है।
सरसों नहीं शस्य वधू के लिये,
सजी कोटिक कंचन बालियाँ हैं।
मधुमास में गा रहे कोकिल हैं,
वट वृक्ष बजा रहे तालियाँ हैं।

❖❖❖

कामना

- अवधेन्द्र प्रताप सिंह

हर बार उलझ सा जाता हूँ,
उन कोमल से घन–केशों में।
मैं मुखर मौन हो घूम रहा–
स्मृतियों के रम्य प्रदशों में।

जिह्वा यह साथ नहीं देती,
कुछ मन की बात कही जाती।
नजरें भी अटकी रह जातीं,
कुछ और व्यग्रता बढ़ जाती।

पैरों में कम्पन आ जाता,
सब ओज शिथिल सा हो जाता।
'स्मिता'पसर जाती सिहर–सिहर।

वह कुछ बोलें इससे पहले,
कुछ स्वर मुखरित मैं कर देता।
मन ही मन पद–रज नमन किये,
मैं तुरत वहाँ से चल देता।

वह ठिठक हँसी–सी हँस देते,
मैं मन्द–मन्द खुश हो लेता।
मधु–बूँद–सदृश मधु–स्वर उनका,
हर–प्यास हरण–सा कर लेता।

मन छोड़ मैं बरबस चल देता,
कुछ मीठी यादें रख लेता।
जीवन का सुख–दुःख साथ लिये,
कुछ आशाओं का दिया लिये।

काँटो के पथ पर चल पड़ता,
उनकी यादों को संग लिये,
ईश्वर उनको खुशहाल रखें,
बस उर में यह विश्वास लिये।

❖❖❖

चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका'

जन्म - 2 फरवरी 1915 निधन -18 अप्रैल 1982

यही खेतवा की माटी मइहाँ, हम रेंगेन है, बइयाँ–बइयाँ।
यहि खेतवा की धरती मइहाँ, हम चलबु सीखेन है, पइयाँ–पइयाँ।
मइया के अँचरा दूधु पिया, ई खेतवा की निमछइयाँ माँ।
औ यही ख्यात की माटी माँ लोटेन–पोटेन लरिकइयाँ माँ।

सब तन माँ धूरि मलि–मलि कै, यहि खेतवा का अपनावा है।
नन्हें पाँयन ते कूदि–कूदि हम आपनि मोहर लगावा है।
ई खेतवा की गोदी मइहाँ हम ख्याल अनेकन ख्याला है।
औ यही ख्यात के दानन ते हम अपने तन का पाला है।

सृजन स्मरण

गोपाल प्रसाद व्यास

जन्म - 13 फरवरी 1915 निधन -28 मई 2005

हाय, न बूढ़ा मुझे कहो तुम।
शब्दकोश में प्रिये, और भी–
बहुत गालियाँ मिल जाएँगी,
जो चाहे सो कहो, मगर तुम,
मेरी उमर की डोर गहो तुम।
हाय, न बूढ़ा मुझे कहो तुम।

क्या कहती हो–दाँत झड़ रहे?
अच्छा है, वेदान्त आएगा।
दाँत बनाने वालों का भी,
अरी भला कुछ हो जाएगा।